वेद और हमारे आचरण

ऋग्वेद में कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि वह जीवन में जो कुछ कार्य करें उसे ईश्वर को साक्षी बना कर करें। जिस प्रकार हमारे कुछ कर्तव्य देवताओं के प्रति हैं, उसी प्रकार मनुष्यों के प्रति भी हैं । ऋग्वेद के सूक्तों :

ओज॒स्तदंस्य तित्विष उ॒भे यत॒ सम॒वर्तयात । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ।

(ऋग्वेद ८/६/५)

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम् ।

मक्षिव१स्था धिया नश

(ऋग्वेदः १/२/६)

में कहा गया है, जो दाता है, उनका धन कभी क्षीण नहीं होता । ऐसे मनुष्य को कोई सान्त्वना नहीं दे सकता जो भोजन के पदार्थ को पास में रखते हुए भी एक निर्बल के प्रति, जिसे भोजन की अत्यन्त आवश्यकता है, अपने हृदय को निष्ठुर और कठोर बना लेता है और सहायता के लिये आये हुये दु:खी व्यक्ति के आगे भी जिसका हृदय नहीं पसीजता, किन्तु इसके विपरीत उसके सामने ही अपने भोगों में मग्न रहता है ।

आज देश की सामाजिक व्यवस्था ऋग्वेद प्रतिपादित नैतिक जीवन पर आधारित नहीं रह गयी है । किसी भी गलत कार्य के प्रती न तो ईश्वर से भय है और न अच्छे कार्यों के लिये ईश्वर के प्रति कृतज्ञता ही । माता, पिता, गुरू अतिथि को वेदों ने दवेता की श्रेणी में रखा हैं क्योंकि ये मनुष्य को कुछ न कुछ देते हैं और देने वाला ही देवता कहा गया है । आधुनिक समाज में माता, पिता, गुरू और अतिथि को जो सम्मान और आदर मिलना चाहिए उसका पूर्णत: अभाव है । आज मनुष्य-मात्र के प्रति मनुष्य का जो कर्तव्य है उससे वह पूर्णत: विमुख हो गया है । जो समक्ष हैं, धनवान हैं, जिनके पास सम्पत्ति का अम्बार है, वे आज निष्ठुर हृदयहीन और स्वार्थी हो गये हैं । वेदों में जिस कार्य को निषेध और दूषित ठहराया गया है , अधुनिक समाज ने उसे ही अपने भोग-विलास का अंग बना रखा है । पाप और व्याभिचार को सभ्यता का रूप रंग प्रदान किया गया है । अपनी गलतियों के प्रति न तो उसके मन में कोई प्रायश्चित्त है और न ही ग्लानि, जबकि वेदों में कहा गया है कि "यदि हमनें किसी ऐसे मनुष्य के प्रति जो हमसे प्रेम करता है, पाप किया है, मित्र और साथी का अनिष्ट किया है, किसी पड़ोसी को जो हमारे साथ रहता है अथवा पराये को भी नुकसान पहुँचाया है तो हे प्रभु। इस नियमोल्लंघन के पास से हमें मुक्त करों ।

अर्यम्यं वरूण मित्र्यं वा सखायं वा सद्मिद्भ्रातरं वा ।

वेशं वा नित्यं वरूणावरणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रयस्तत् ।।

(ऋग्वेद : ५.८५.७)

हमारे देश ने स्वाधीनता के पश्चात लोकतांत्रिक प्रणाली को स्वीकार किया है । लोकतंत्र के गुछ निश्चित नियम हैं जिसके पालन के लये हम सब बचन बद्ध हैं । इसके लिये देश के कर्णधारों ने भारतीय संविधान का निर्माण किया । सरकार संविधान के अन्तर्गत कानून या नियम बनाती हैं । कानून का पालन सबके लिये अनिवार्य होता है । कानूनों का निर्माण करते समय सामाजिक परम्पराओं, धार्मिक आस्थाओं, नैतिक मूल्यों आदि का ध्यान रखा जाता है । समाज उसे अपनी स्वीकृति प्रदान करती है ।

गड़बड़ी आज यह है कि कानून बनाने में जिनकी अगुवाई है, वही उसका सबसे ज्यादा उल्लंघन कर रहे हैं । धन, बल, छल, संगठन के बल पर उन्ही नियमों को तोडने में लगे हैं जिन्हे उन्होंने स्वयं बनाया है । देखा- देखी जनता में भी कानून के पालन करने में आस्था नहीं रह गई है । इस प्रकार आज का सबसे बड़ा कारण भी यहीं है । ठीक ही कहा गया है कि "जहाँ नियम कार्य करता है वहाँ अव्यवस्था अथवा अन्याय केवल अस्थायी और आंशिक रूप से ही रह सकते हैं । दुष्ट और अन्यायी की विजय स्थायी नही होती परन्तु इसके विपरीत आचरण पर सर्वत्र अधर्म ही व्याप्त रहता है।

इस बात को अब हर तरह से स्वीकार किया जाने लगा है कि देश में नियम तो बहुत बनते हैं लेकिन उनका उचित रूप से पालन नहीं होता । नियम का उल्लंघन ही सब प्रकार की अव्यवस्था का कारण है । हर क्षेत्र में अलग-अलग नियम होते हैं जैसे आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, सैनिक, धार्मिक, नैतिक आदि । इनके अपने-अपने नियम हैं, और जब वे अपने नियमों के अनुसार आचरण करते रहते हैं तब तक सब कुछ सामान्य ढंग से चलता रहता हैं ।

ऋग्वेद द्वारा प्रतिपादित नियम की ओर ध्यान दें तो हम पायेंगे कि "ऋत"का बहुत अधिक महत्व है।"ऋत"का शाब्दिक अर्थ होता है-उचित,सही,स्थिर और निश्चित नियम"ऋत" हमारे आगे सदाचार के आगे एक मानदण्ड को प्रस्तुत करता है । यह वस्तुओं का व्यापार सारतत्व है, अर्थात वस्तुओं की यर्थाथता है । अव्यवस्था अनृत मिथ्या है, जो सत्य का विरोधी एवं व्यवस्थित मार्ग का अनुसरण करते हैं, सत्पुरूष हैं। व्यवस्थित आचरण को सत्यव्रत कहा गया है। स्थिरता एवं संगति धार्मिक जीवन का मुख लक्षण हैं ।

ऋग्वेद में जिस नियम तथा सत्य का प्रतिपादन हुआ है, जिस व्यवस्थित आचरण के पालन करने का निर्देश है उसके अनुसार कार्य करने वाले व्यक्ति सत्यव्रती कहे जाते हैं । इनसे बने समाज में नियमों के उल्लंघन का प्रश्न ही नहीं उठता ।

नैतिक जीवन का विस्तृत ब्योरा हमें ऋग्वेद के सुक्तों में मिलता है। ईश्वर देवता धार्मिक अनुष्ठान और मनुष्य जाति के प्रति कर्तव्य निर्धारित किये गये है। अतिथि सत्कर्म को तो वैदिक सूक्तों में बहुत ही ऊँचा स्थान दिया गया है।वेद मनुष्यों और देवताओं के बीच एक निकटतम और घनिष्ठ संबंध को महत्व प्रदान करता है।

वैदिक सुक्तों में अनेक प्रसंग मिलते हैं जिनमें हमें सदाचार का ऐसा संदेश प्राप्त होता है जिन पर यदि हम आचरण करें तो समाज में आज फैली अव्यवस्था,अराजकता, अनैतिकता, अधार्मिकता अपने आप समाप्त हो जाय और सभी अपने अपने नियमों का स्वत: पालन करने लगें । बाह्य अनुशासन तो थोपा हुआ अनुशासन है जो स्थायी कभी नही हो सकता । स्थायी अनुशासन तो आत्म अनुशासन से प्राप्त होता है जिसे हम वैदिक सूक्तों के अनुशीलन से ही ग्रहण कर सकते हैं ।

आर. पी. श्रीवास्तव
गाजियाबाद